क्रिया

परमपूज्य आगमज्ञाता साहित्याचार्य मुनिराज
श्री देवेन्द्रविजयजी महाराज के शिष्य
मुनिश्री नरेन्द्र विजयजी 'नवल'...

यों तो संसार के सभी प्राणी क्रिया करते हैं, कोई भी बिना क्रिया के नहीं रह सकता, पर यहाँ लौकिक क्रिया के विषय में नहीं कहना है, यहाँ तो लोकोत्तर क्रिया, धर्मक्रिया, सम्यक् क्रिया अर्थात् सम्यक् चारित्र के विषय में चर्चा करनी है।

आत्मा और कर्म का बन्धन अनादिकाल से है। संसार में यह बन्धन मोह और अज्ञान के कारण है। फिर भी इस संसार में सुख की खोज निरंतर चालू है। सभी प्राणी सुखी होना चाहते हैं, कोई भी दुःखी नहीं रहना चाहता, पर ज्ञानियों का कहना है कि संसार में दुःख ही दुःख भरा है। संसार में दुःखभय, पापभय, रोगभय, वेदनाभय, जराभय और न जाने कितने-कितने और कैसे-कैसे भय भरे पड़े हैं।

ये दुःख क्यों हैं? क्योंकि आत्मशक्ति दब गई है और कर्म की शक्ति जीव पर हावी हो गई है। कर्म की शक्ति को सत्त्वहीन करने के लिए, कर्म के बन्धनों को तोड़ने के लिए धर्मशक्ति का प्रयोग आवश्यक है। चार पुरुषार्थों में धर्म मुख्य पुरुषार्थ है। धर्म बीज है अर्थ और काम तो तना और पत्तियाँ हैं, मोक्ष उसका फल है।

कर्मबन्धन को काटने के लिए धर्मक्रिया या सम्यक् चारित्र की आवश्यकता है। संसारी जीव मोहान्धकार और अज्ञानान्धकार में भटक रहे हैं। धर्म रूपी प्रकाश से मार्ग तो मिला है, पर उस मार्ग पर चलने से ही कर्म कटेंगे। परम ज्ञानी पुरुष स्वयं प्रकाश प्राप्त कर उस पर चलते हैं और दूसरों को भी उस पर चलने की प्रेरणा देते हैं।

श्री हरिभद्रसूरिजी ने १४४४ ग्रन्थों की रचना की थी। आज तो उनमें से कुछ ही उपलब्ध हैं। उनका धर्मबिन्दु ग्रन्थ जीवन-निर्माण के लिए अत्यंत उपयोगी है। जीवन में नैतिक, धार्मिक, व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग इसमें मिलेगा।

कभी किसी से मामूली सा झगड़ा हो जाए तो आप वकील की सलाह लेते हैं। घर में किसी को मामूली सा बुखार हो जाए तो डॉक्टर के पास जाते हैं। मकान बनाना हो तो इंजीनियर की सलाह लेते हैं। फीस देकर, सलाह लेकर उसके कहे अनुसार करते हैं, किन्तु धर्मगुरु बिना फीस लिए जीवन का सच्चा मार्ग बताते हैं और सच्ची सलाह देते हैं, पर उनकी सलाह पर चलते कितने लोग हैं?

धर्मक्रिया में सबसे प्रथम स्थान सत्संग का है। धर्म की वाणी को तथा शास्त्र की वाणी को निरन्तर सुनना चाहिए। सन्तजनों के मुख से उच्चरित जिनवाणी को सुनने से विचारशुद्धि प्राप्त होती है। वस्त्र शुद्ध हों, मकान शुद्ध हो, खाना-पीना शुद्ध हो, सब कुछ शुद्ध हो, पर विचार शुद्ध न हों, आचरण शुद्ध न हो तो कहिए क्या होगा?

बुद्धि की शुद्धि होगी तो सिद्धि भी मिलेगी, प्रसिद्धि भी होगी और समृद्धि भी बढ़ेगी। बुद्धि की शुद्धि के बारे में एक दृष्टान्त याद आ गया है। एक महात्माजी नाव में संवार थे। कुछ अन्य लोग भी उस नाव में बैठे थे। कुछ तो शान्तिप्रिय सज्जन थे, कुछ को उन्माद सूझ रहा था। खाली दिमाग शैतान का घर होता है। परस्पर बातचीत होने लगी। कुछ बातें सत्य होती हैं, कुछ सत्य के करीब होती हैं, कुछ झूठ होती है और कुछ झूठ के करीब होती हैं। महात्माजी ने कहा, भाइयो! बातें करनी हैं तो कुछ अच्छी बातें करो, जिन्हें सुनकर प्रसन्नता हो, आपस में मधुरता बढ़े, मित्रता बढ़े। आप लोगों की बातें सुनकर तो सभी अन्य यात्रीगण लज्जा एवं घृणा के भाव से ओतप्रोत हो रहे हैं। महात्माजी की शिक्षा लोगों को ऐसी लगी मानो साँप की पूँछ पर पाँव रख दिया हो। वे लोग महात्माजी को ही भला-बुरा कहने लगे। महात्माजी भजन में लीन हो गए। एकाएक आकाशवाणी हुई, महात्माजी! अगर आप कहें तो इन दुष्टों को अभी फल चखा दूँ, इस नाव को उलट दूँ। आकाशवाणी सुनकर सब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घबराए। महात्माजी के पैर पकड़ने लगे, क्षमा माँगने लगे। थोड़ी देर में पुनः वही आकाशवाणी हुई। महात्माजी ने आँखें खोलीं, विनम्र शब्दों में बोले, 'देव! तुम उलटना ही चाहते हो तो इन सबकी बुद्धि उलट दो। नाव उलटने से क्या होगा?'

मनुष्य की कुबुद्धि ही पाप की ओर प्रेरित करती है। कुबुद्धिधारी को मिटाने से क्या होगा? कुबुद्धि को ही मिटा देना चाहिए। सद्बुद्धि पाने के लिए जिनवाणी ग्रन्थों को तथा सूत्रों को सुनना आवश्यक है। सुनते हुए पूरी सावधानी रखनी चाहिए। अच्छी वाणी सुननी चाहिए, एकाग्रतापूर्वक सुनना चाहिए और मौन होकर सुनना चाहिए।

इस संसार में अनेक बातें हैं, बातों की क्या कमी है ? यदि व्यक्ति गप्पें लगाने बैठ जाये तो घड़ी थक जाएगी, किन्तु व्यक्ति नहीं थकेगा। किन्तु अच्छी वाणी सुनने में किसकी रुचि होती है? कानों द्वारा किसी के विचार सुनकर विवेक से सोचें। यदि वह ठीक लगे तो मन में उतरने दें, अन्यथा सुना-अनसुना कर दें। सुनें सबकी, करें मन की।

एक बार सेठानी दिवालीबाई व्याख्यान सुनने गई थी। नित्य ही सुनने जाया करती थी। गुरु महाराज भगवती सूत्र पर व्याख्यान देते थे। भगवती सूत्र में गोयमा शब्द बार-बार आता है। गुरु महाराज गंभीर होकर अनूठे ढंग से गोयमा शब्द बोलते थे। दिवालीबाई सुनते-सुनते समाधि लगा लेती थी (सो जाती थी)। एक ध्यान से सुनने का बहाना बनाती। एक बार घर पर बहूजी ने पूछा-माताजी! गुरु महाराज का प्रवचन कैसा है? आज गुरुजी ने क्या बताया? माँजी ने कहा-"गुरुजी व्याख्यान तो अच्छा देते हैं, परन्तु उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं लगता। प्रवचन के दौरान बार-बार ओय माँ, ओय माँ करते रहते हैं।"

दिवालीबाई ने कैसा अच्छा प्रवचन सुना? गोयमा से ओय मां हो गया। क्या आप भी ऐसी ही एकाग्रता से प्रवचन सुनते हैं? एकाग्रता से सुनेंगे तो ध्यान में भी रहेगा। जो सुना हो उसे घर पर जाकर लिख लेना चाहिए भविष्य में बहुत काम आएगा।

प्रवचन मौन होकर सुनना चाहिए। मौन से सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। ज्ञान, ध्यान, भोजन और भजन मौनपूर्वक करने चाहिए। भोजन करते हुए बोलने पर ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है, जिससे मूकपन, गूंगापन, तुतलाहट और अज्ञान आता है। भजन करते हुए भी नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि बातें करने से भजन में रस नहीं आता।

प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारंभ में मंगलाचरण किया जाता है। धर्मबिन्दु ग्रन्थ के भी प्रारंभ में ग्रन्थकार मंगलाचरण करते हैं, क्योंकि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' अच्छे कार्य में बहुत विघ्न आते हैं। हम जब माला फेरते हैं, प्रवचन सुनते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं तब नींद आ जाती है। धर्म करते हुए जीवों को ऐसे ही १३ प्रकार के विघ्न आते हैं।

सेठ मफतलाल प्रवचन सुन रहे थे। प्रवचन में द्रव्यगुणपर्याय का विवेचन चल रहा था, इसलिए रस नहीं आ रहा था, नीरस लग रहा था। सेठ को प्रवचन सुनते-सुनते झपकी आने लगी। गुरु महाराज ने देख लिया और पूछ बैठे "क्यों सेठजी! आप सो रहे हैं?" सेठजी ने बात छिपाई और कहा, "नहीं ध्यान से सुन रहा हूँ। दूसरी बार फिर सोते देखा तो फिर टोका। सेठजी बोले, "नहीं-नहीं, मैं सो नहीं रहा हूँ, कौन कहता है कि मैं सो रहा हूँ। मैं तो समाधि लगाकर एकाग्रता से सुन रहा हूँ।" तीसरी बार भी सेठजी को उसी हालत में देख कर गुरु महाराज ने भाषा बदलकर पूछा, "क्यों सेठजी! जीते हैं क्या?" सेठजी ने तुरंत नींद में ही उत्तर दे दिया, "नहीं-नहीं।" इस बार पोल खुल गई। सेठजी की क्या गति थी? नींद में सोते हैं या जीते हैं का कुछ अन्तर ही मालूम नहीं पड़ा। सोचा कि सोते हैं क्या, यही पूछा होगा, इसलिए कह दिया- नहीं नहीं, जबकि पूछा था कि जीते हैं क्या?

अच्छे कार्यों में इस प्रकार के अनेक विघ्न आ जाते हैं। आप नियम बना लीजिए कि १२ माह तक निरंतर श्री गौड़ीजी की पूजा करूँगा, फिर देखिए कैसे-कैसे विघ्न आते हैं?

मंगल दो प्रकार के होते हैं, द्रव्यमंगल और भावमंगल। मंगल का अर्थ होता है 'मं पापं गालयति इति मंगलम्' जो पाप को गला दे, टाल दे वह मंगल है। 'धर्मबिन्दु' में भाव- मंगल करते हुए कहा गया है कि-

प्रणम्य परमात्मानं समुद्धृत्य श्रुतार्णवात्।
धर्मबिन्दुं प्रवक्ष्यामि, तोयबिन्दुमिवोदधेः॥

मंगल-विधान का उद्देश्य है- विघ्नों का नाश हो। आप छोटी-सी यात्रा करने जाते हैं या देशान्तर भी जाते हैं तो द्रव्य-मंगल (शकुन, स्वर) सब कुछ देखते हैं न? प्रस्थान करते समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी और प्रवेश करते समय भी। आपको भाव-मंगल भी करना चाहिए। सूर्यस्वर चंद्रस्वर चलता हो या दिन में दायें और रात में बायें पैर को प्रथम रखकर कम से कम ३-३ बार नवकार मंत्र का स्मरण करना चाहिए।

मंदिर में देवदर्शन तथा देवपूजा के बाद बाहर आकर नवकार मंत्र गिन लेना चाहिए। यहाँ पर ग्रन्थकार ने भाव-मंगल किया है। परमात्मा को प्रणाम किया है। परमात्मा को नमस्कार। नमस्कार करने से झुकना पड़ता है अर्थात् विनय करनी पड़ती है इसलिए नमस्कार से अहंकार दूर होता है। व्यक्ति के जीवन में ईगो (अहंकार) ही खतरनाक है। अहं का नाश ही विकास का मूल है। अहं-अहंकार विघ्न है। सर्वप्रथम सर्वगुणों का आधार विनय गुण है। विनय को क्रियान्वित करने से अहंकार स्वयं नष्ट हो जाता है। अहंकार-नाश का स्वाधीन उपाय है परमात्मा को नमस्कार। इसमें कोई पराधीनता नहीं, परतंत्रता नहीं। परमात्मा को नमस्कार करने से क्या परमात्मा से परिचय होता है? आत्मा दो प्रकार की होती है, परम और अपरम। परम किसे कहते हैं? जिसके कर्म दूर हो गए हों, जो लोक और अलोक को देखते हों, जिनको सर्वदृश्य हो, जो निर्लेप, निष्काम, निरहंकार, निस्पृह, निरंजन हों, अष्ट प्रातिहार्य से सुशोभित हों, वाणी के ३५ गुण हों, ३४ अतिशय हों। जिनकी वाणी को सब प्राणी समझ सकें, सबके संशय दूर हो जाएं। जहाँ पदार्पण हो वहाँ सुख-शान्ति फैल जाए, उसको परम आत्मा कहते हैं। परम यानी उत्कृष्ट है आत्मा जिसकी।

परमात्मा शब्द में चमत्कार है। प का आकार ५ जैसा, र का आकार २ जैसा, मा का आकार ४ जैसा, (का आकार ८ जैसा और मा का ४ जैसा, कुल चौबीस की संख्या होती है। तीर्थंकरों की संख्या भी चौबीस है। अतः परमात्मा को नमस्कार करने से २४ तीर्थंकरों को नमस्कार हो जाता है। अपनी हथेली में भी २४ की संख्या अंकित है, सिद्धशिला भी है। किन्तु अभी हम अपरम है। अपरम से परम बनने की, आत्मा से परमात्मा बनने की उपासना ही धर्मक्रिया है, धर्माराधना है।

अपरम आत्मा परम आत्मा का ध्यान करे, आलम्बन ग्रहण करे तो स्वयं भी परम बन जाती है। आपको अपरम ही रहना है या परम बनना है, बतलाइए? बनना तो परम है पर शक्ति नहीं है। शक्ति कैसे प्राप्त हो? परमात्मा की भक्ति से ही शक्ति प्रकट होगी। इसलिए सर्वप्रथम परमात्मा के शासन के परम भक्त बनें, उनकी वाणी सुनें, उनकी आराधना करें, यही धर्मक्रिया है, यही सम्यक् क्रिया या सम्यक् चारित्र है। भक्त तीन प्रकार के होते हैं सदैया, कदैया, भदैया। सदैया भक्त बनें, तभी शासन के प्रति समर्पण का भाव जाग्रत होगा। समर्पण करें, समर्पण करने से ही सदैया बनेंगे।

सुनकर तथा समझकर उसके अनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिए, गुणों को जीवन में उतारना ही सम्यक् क्रिया है, सम्यक् चारित्र है। 'ज्ञानस्य फलं विरतिः' के अनुसार ज्ञान का फल त्याग है। बिना चारित्र के, बिना क्रिया के शुष्क ज्ञान व्यर्थ है। कहा गया है-

पिंजरा खुला, पर पाँखें नहीं खुलीं तो क्या?
दीपक जला, पर आँखें बंद रहीं तो क्या?
पैर तो बहुत उठाए, पर गति नहीं तो क्या?
करने की बातें तो बहुत कीं, पर कर्मठता नहीं तो क्या?

शास्त्रकार कहते हैं--

जाणंतोऽवियतरिउं, काइजयोगं न जुंजइ नईए।
सो बुज्झई सोएणं, एवं नाणी चरणहीणो।।

जैसे कोई तैरना जानते हुए भी नदी में हाथ-पैर न हिलाए तो वह नदी में डूब जाता है। वैसे ही धर्म-सिद्धान्तों को जानते हुए भी यदि कोई उनके अनुसार आचरण न करे तो वह दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। कहा गया है-

सुबहुंपि सुयमहीयं, किं का हितो चरणविप्पहूणस्स।
अंधस्स जह पलिता, दीवसयसहस्स कोडी वि।।

जैसे अन्धे के समक्ष सैकड़ों, हजारों, करोड़ों दीपक भी व्यर्थ हैं, वैसे ही चारित्र का पालन न करने वाले के लिए ज्ञान का भण्डार भी व्यर्थ है। 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदा।' आचारहीन को वेद भी पवित्र नहीं बना सकते। महान योगी भर्तृहरि ने कहा है-

आहारनिद्राभयमैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
तत्रापि धर्मो अधिको विशेषो, धर्मेण हीना पशुभिः समानाः।।

आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो मनुष्यों और पशुओं में समान ही हैं। मनुष्य में एक धर्म की ही विशेषता है। धर्म के बिना मनुष्य पशु के समान ही है। धर्म की चर्चा कितनी ही करे, पर क्रिया कुछ भी न करे, तो उसका कल्याण हो सकता है क्या? कदापि नहीं। इसीलिए कहा है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चर्चा ही चर्चा करें, धारणा करे न कोय।
धर्म बिचारा क्या करे, धारे ही सुख होय।।

अतः यह स्पष्ट है कि ज्ञानाराधना का सार है सम्यक् चारित्र।

अनपढ़ से पढ़ता भला, पढ़ता से भणवान।
भणता से गुणता भला, जो हो आचारवान।।

अनपढ़ से पढ़ने वाला अच्छा है, पढ़ने वाले से समझने वाला अच्छा है, समझने वाले से चिंतन करने वाला अच्छा है, पर सबसे अच्छा तो वह है जो उस पर आचरण करे।

जिसमें सदाचरण की सुगन्ध हीं है, वह साक्षर भी बेकार है, क्योंकि उसको विपरीत होने में समय नहीं लगता। साक्षरा को उल्टा कर दें तो राक्षसा बन जाता है। वही आजकल हो रहा है। आज शिक्षा का प्रचार तो बहुत है किन्तु सद्संस्कार देने वाली, सच्चरित्र बनाने वाली नैतिक शिक्षा के अभाव में शिक्षितों में अनपढ़ों से भी अधिक उद्दंडता, उच्छृंखलता व अनुशासनहीनता देखने को मिलती है। शिक्षा के साथ नैतिकता का होना अत्यंत आवश्यक है। एक पौराणिक कहानी है-

कौरव-पाण्डवों को गुरु द्रोणाचार्य ने एक पाठ याद करने को कहा। पाठ था 'सत्यं वद, क्षमां चर' सत्य बोलो, क्षमा करो। दूसरे दिन जब यह पाठ गुरुजी सबसे सुन रहे थे, तब सबने तो पाठ सुना दिया पर युधिष्ठिर चुप रहा। गुरु ने कहा- क्या बात है? तुम सबसे बड़े हो और तुमने अभी तक पाठ याद नहीं किया। दूसरे दिन भी युधिष्ठिर ने पाठ नहीं सुनाया तो गुरुजी ने उसके थप्पड़ मार दिया। कुछ दिन बाद महाराज धृतराष्ट्र पाठशाला का निरीक्षण करने आए तब सबने तो पाठ सुना दिया पर युधिष्ठिर ने आधा ही सुनाया 'क्षमं चर' पूछने पर बताया कि अभी मुझे यह पाठ आधा ही याद हुआ है। महाराज धृतराष्ट्र ने कहा- तुम पाण्डवों में श्रेष्ठ हो, तुमसे तो हमें बहुत आशा है। युधिष्ठिर बोला, मैं मात्र पाठ को रट लेने को याद करना नहीं मानता, उसे जीवन में उतारने को ही याद करना मानता हूँ। थप्पड़ खाकर भी क्रोध नहीं आया इसलिए आधा पाठ याद हुआ मानता हूँ। युधिष्ठिर की इस बात से सब प्रभावित हुए। भविष्य में यही राजकुमार महान् सत्यवादी बना, जो धर्मराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चारित्र शब्द चर् धातु से बना है। चर् अर्थात् चलना, गति करना। आत्मा का विभाव से स्वभाव में गति करना चारित्र है। प्राकृत भाषा में चारित्र के लिए चयरित्तं शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है विभाव रूप चय से आत्मा को रिक्त करना, खाली करना। उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में लिखा है-

'चयस्स रिक्तिकरणं चरित्तं'

यथाख्यात निर्मोह भाव, छद्मस्थ तथा जिन को होता।
करता संचित है कर्मरिक्त, चारित्र वही है कहलाता।।

संचित कर्म को रिक्त करने को ही चारित्र कहा गया है।

तत्त्वार्थ की प्रतीति के अनुसार क्रिया करना चरण या आचरण कहलाता है। अर्थात् मन, वचन, काया से शुभकर्मों में प्रवृत्ति करना परमचारित्र है, सम्यक् क्रिया है। तात्पर्य यह है कि पाप एवं सावद्य प्रवृत्ति का त्याग कर मोक्ष हेतु संयम में शुभ या शुद्ध जो प्रवृत्ति की जाती है, उसी का नाम चारित्र है। मर्यादापूर्वक मन व इंद्रियों को पापप्रवृत्ति से रोककर पुण्य परिणति रूप बाह्य क्रिया महाव्रत, अणुव्रत, समिति, गुप्ति, व्रत, प्रत्याख्यान, तप, त्याग आदि व्यवहार चारित्र है। 'चारित्तं समभावो' के अनुसार समभाव में स्थित होना निश्चय चारित्र है। अथवा 'स्वरूपे चरणं चारित्रम्।' अर्थात् स्वरूप में आत्मा के शुद्ध स्वभाव में लीन होना चारित्र है।

चारित्र दो प्रकार का कहा गया है अणगार चारित्र, आगार चारित्र अर्थात् साधु का संयम और गृहस्थ का आंशिक संयम। पाँच महाव्रत रूपी मुनिधर्म को अणगार चारित्र और श्रावक के बारह व्रत रूपी धर्म को आगार चारित्र कहा जाता है। अणगार धर्म को सम्पूर्ण चारित्र और आगार धर्म को आंशिक चारित्र भी कहा जाता है। आगार का अर्थ गृह है, अतः अणगार का अर्थ गृहरहित मुनि और आगार का अर्थ गृहस्थ होता है।

चारित्र तेरह प्रकार का भी माना जाता है। पाँच समिति, तीन गुप्ति और पाँच महाव्रत के पालन रूप सम्यक् क्रिया को तेरह प्रकार का चारित्र कहते हैं। निरवद्य एवं निर्दोष प्रवृत्ति को संयम कहते हैं। मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोककर संसार के कारणों से आत्मा की भली प्रकार से रक्षा करने को गुप्ति कहते हैं।

काम होने पर ही उपयोगपूर्वक चलना, किसी भी दूसरे जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो, इस प्रकार उपयोगपूर्वक चलने को ईर्या समिति कहते हैं। अंग्रेजों में कहावत है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

`Look before you leap & think before you speak'

कदम उठाने के पहले देखो और बोलने के पहले सोचो। आवश्यक होने पर ही निर्दोष वचन बोलने को भाषा समिति कहते हैं। ४२ दोष टालकर निर्दोष भिक्षा ग्रहण करने को एषणा समिति कहते हैं। उपकरणों के प्रतिलेखन और प्रमार्जन में विवेक रखने को निक्षेपण समिति कहते हैं।

मन को अशुभ ध्यान से रोककर निरवद्य शुभ या शुद्ध तत्त्वचिंतन में लगाने को मनोगुप्ति कहते हैं। यह सबसे कठिन है। इसको साध लेने पर साधना में निश्चित सफलता मिलती है। कहा भी गया है-

तन से जोगी सब हुए, मन से बिरला कोय।
जो मन से जोगी हुए, सहज ही सब सिद्ध होय॥

कबीरदासजी ने भी इस विषय में ऐसा ही कहा है-

कबीरा मनडुं गयंद है, अंकुश दे-दे राख।
विष की बेला परिहरे, अमृत का फल चाख॥

जिह्वा को सावद्य और दोषपूर्ण वचन बोलने से रोकना वचनगुप्ति है। वचनगुप्ति का संबंध जीभ से है, जिसको जीतना अन्य इंद्रियों की अपेक्षा अधिक कठिन है, क्योंकि यह एक होते हुए भी इसके दो कार्य हैं, बोलना और खाना। जीभ को वश में करना साधक के लिए अत्यंत आवश्यक है। जीभ के वश होकर ही संयम पालन में विघ्न आते हैं। जीभ सबसे छोटा अंग है पर इसको वश में करना ही सबसे कठिन है। जिन्होंने इसको वश कर लिया उन्होंने सब वश में कर लिया ऐसा समझना चाहिए। अधिकांश झगड़े, मारपीट और बड़े-बड़े युद्ध भी इस जीभ पर नियंत्रण न होने से ही होते हैं। कवि रहीम जी ने ठीक ही कहा है-

रहिमन जिह्वा बावरी, कह गई स्वर्ग पाताल।
आपहु तो कह भीतर गई, जूती खात कपाल॥

साधक को मौन रखना चाहिए। बहुत आवश्यकता होने पर ही बोलना चाहिए। बक-बक नहीं करनी चाहिए। जो भी बोला जाए उसे पहले हृदय में तौल-तौलकर बोलना चाहिए। कवि कहते हैं-

बोली-बोल अमोल है, बोल सके तो बोल।
पहले हृदय तौल कर, पाछे बाहर खोल॥

जो भी बोला जाए, वह हित, मित और सत्य हो। सत्य होने पर भी जो अप्रिय है, कटु है, उसे नहीं बोलना चाहिए।

एक उर्दू शायर ने तो कहा है-

कुदरत को नापसंद है, सख्ती जबान में।
इसलिए दी नहीं, हड्डी जवान में॥

शरीर को आस्रव प्रवृत्ति से रोककर संवर में स्थिर करना कायगुप्ति है। साधक के लिए शरीर पर नियंत्रण भी आवश्यक है। साधक की भावना सदैव महाव्रतों का तीन करण तथा तीन योग से पालन करने की होती है। गृहस्थ की भावना अपने अणुव्रतों का दो करण तथा तीन योग से पालन करने की रहती है। अर्थात् मन, वचन, काया से आस्रव सेवन करूँ नहीं, कराऊँ नहीं।

चारित्र के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता। मात्र ज्ञान से कोई पण्डित नहीं हो सकता। कहा गया है-

पढ़े पढ़ावे चिन्तवे, व्यसनी मूरख दोय।
जे जीवन में आचरे, ते जन पण्डित होय॥

तत्त्वार्थ सूत्र में भी कहा गया है कि 'सम्यक्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।' क्रिया के बिना शुष्क ज्ञान लँगड़ा है और ज्ञान के बिना मात्र क्रिया अन्धी है। इस विषय में एक दृष्टान्त है।

एक सेठ के घर में चोर घुस आए। सेठानी ने सेठ से कहा कि 'घर में चोर घुस गए हैं।' सेठ बोला, 'जानता हूँ।' चोरों ने तिजोरी खोल ली तो सेठानी ने फिर कहा। सेठ फिर बोला 'जानता हूँ।' चोरों ने आभूषणों और नोटों की गठरी बाँध ली और जाने को तैयार हो गए। सेठानी ने फिर सावधान किया कि चोर माल ले जा रहे हैं। सेठ फिर बोला- 'जानता हूं।' तब सेठानी को क्रोध आ गया। वह चिल्लाकर बोली-

जानूँ जानूँ कर रह्या, माल गयो अति दूर।
सेठानी कहे सेठ से, थारें जाणपणा में धूर॥

सचमुच ऐसे जानने से कुछ भी फायदा नहीं है। अंग्रेजी में भी कहावत है कि-

``No knowledge is power unless put into action''

अर्थात् जब तक ज्ञान को क्रियान्वित नहीं किया जाए, तब तक वह सशक्त नहीं बन सकता। नीति में कहा है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'क्रियाविहीनाः खरवद् वहन्ति।' अर्थात् बिना क्रिया के ज्ञान गधे के समान बोझा ढोना है।

अठारह पापों में से एक मिथ्यादर्शन को छोड़कर शेष सत्रह पाप चारित्र से रुकते हैं। अतः बिना चारित्र के मनुष्य छत रहित मकान जैसा है जिसमें वह आनंद से ही नहीं रह सकता।

आचरण की एक बूँद भी विचारों के समुद्र से अधिक प्रभावकारी होती है। आचरण के कण के समक्ष विचारों का मण भी नगण्य है। चक्रवर्ती सम्राट् और देवेन्द्र भी एक मुनि का चारित्र के कारण ही वंदन करते हैं। स्वामी विवेकानंद जब अमेरिका गए थे तब उनके पहनावे को देखकर लोग उन पर हँसते थे। किन्तु वे चारित्रवान् थे, उन्होंने कहा कि- "तुम्हारी संस्कृति को दर्जी सीता है, जबकि हमारी संस्कृति का निर्माण चारित्र करता है।" स्वामीजी के आत्मबल और चारित्रबल का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे स्वामीजी के भक्त बन गए।

महात्मा गांधी जब लंदन में पढ़ते थे, तब एक पादरी उन्हें नित्य भोजन करने घर बुलाता था। पर गांधीजी को ईसाई बनाना चाहता था। गांधी के लिए वह शाकाहारी भोजन बनाता था। जब पादरी के बच्चों ने गांधीजी से मांस नहीं खाने का कारण पूछा तो गांधीजी ने उन्हें अहिंसा का महत्त्व समझाया। गांधीजी के चारित्र का बच्चों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि बच्चों ने भी मांस खाना छोड़ दिया। फिर तो पादरी ने गांधीजी को बुलाना ही बंद कर दिया।

आचरण में बड़ी शक्ति होती है। आचरणवान् व्यक्ति बैठा रहे, कुछ भी नहीं बोले, तो भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता है। कहा गया है-

आचार विचार का द्योतक है, चाहे वह कुछ भी कहे नहीं।
घनपटल बीच रहकर भी रवि, चलने में पीछे रहे नहीं।।

चारित्राष्टक में एक मुनि ने चारित्र की महिमा कितने सुन्दर शब्दों में गायी है-

वनेषु नन्दनः श्रेष्ठः, ब्रह्मचर्यव्रतं व्रते।
निरवद्यं वचः सत्यं, तथा चारित्रमुत्तमम्।।

जैसे वनों में नन्दनवन, व्रतों में ब्रह्मचर्य, वचनों में निर्दोष सत्य वचन श्रेष्ठ है, वैसे ही सभी साधनाओं में चारित्र श्रेष्ठ है।

कल्पवृक्षोऽस्ति वृक्षेषु श्रेष्ठः प्राणिषु मानवः।
तद्वत् सर्वेषु लोकेषु, चारित्रमुत्तमं स्मृतम्।।

जैसे वृक्षों में कल्पवृक्ष, तथा सब प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ माना गया है, वैसे ही चारित्र तीनों लोगों में श्रेष्ठ है।

आत्मनः शुद्धिकरणं, दोषध्वान्तनिवारकम्।
कर्मधूरिहरं प्रोक्तमक्षयं सुखदायकम्।।

यह चारित्र आत्मा की शुद्धि करने वाला, दोष रूपी अन्धकार को दूर करने वाला, कर्मरज को दूर करने वाला और अक्षय सुख का दाता है।

चारित्र सर्वोत्तम आभूषण है, इससे बढ़कर संसार में कोई आभूषण नहीं है-

सत्यैकभूषणा वाणी, विद्या विरतिभूषणा।
धर्मैकभूषणा मूर्तिः, लक्ष्मी सद्दानभूषणा।।

सत्य का भूषण वाणी, विद्या का भूषण विरति, धर्म का भूषण मूर्ति और लक्ष्मी का भूषण सद्दान है। ये चारों ही भूषण चारित्र महाभूषण के ही अंग हैं।

सम्यक् चारित्र के बिना त्रिकाल में भी सद्गति संभव नहीं है। आगम में कहा गया है -

जहा खरो चंदनभाववाही, भारस्स भागी न तु चन्दनस्स।
एवं खु णाणी चरणेण हीणओ, णाणस्स भागी न तु सग्गईए।

चंदन को ढोने वाला गधा भार का ही भागीदार होता है, चंदन का भागीदार नहीं होता। इसी प्रकार चारित्र के बिना ज्ञानी मात्र ज्ञान का भार ढोता है, वह सुगति को प्राप्त नहीं कर सकता।

चारित्र के बिना चौदहपूर्वधारी महाज्ञानी भी संसार में परिभ्रमण करते हैं और नरक निगोद तक में जाते हैं। आवश्यकनिर्युक्ति में कहा गया है-

"चरणगुण विप्पहीणो, बुड्ढइ सुबहुं पि जाणंतो।"

बहुत शास्त्रों का ज्ञाता भी चारित्र के बिना संसार-समुद्र में डूब जाता है।

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए चारित्र की अत्यंत आवश्यकता है। आज संसार में जो अशान्ति, युद्ध, दुःख, रोग, अनैतिकता आदि बढ़ रहे हैं, उन सबका मूल कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्र का अभाव और अनैतिकता है। विश्व में सुख-शान्ति के लिए चारित्र पर ध्यान देना आवश्यक है। बचपन से ही बच्चों में नैतिकता के गुण भरने चाहिए। रहीम जी ने चारित्र को पानी की उपमा देते हुए कहा है-

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चून।।

कबीरदास जी ने चारित्र को गुरु की उपमा देते हुए कहा है-

करनी करे सो पूत हमारा, कथनी करे सो नाती।
रहणी रहे सो गुरु हमारा, हम रहणी के साथी।।

भगवान महावीर ने ज्ञान और चारित्र के विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात कही है। जब भगवान से ज्ञान और क्रिया के विषय में पूछा गया तो प्रभु ने कहा -

"विन्नाणे समागमे धम्मसाहुण मिच्छिउं।"

अर्थात् धर्म की पूर्ण उपलब्धि के लिए विज्ञान और चारित्र का समन्वय आवश्यक है, क्योंकि बिना ज्ञान के जड़ क्रिया अंधी है और बिना क्रिया का ज्ञान शैतान है।

आज संसार में जो अणुबम का भय छा रहा है, उसका कारण क्या है? उसका कारण है विज्ञान का धर्म के साथ समन्वय नहीं होना। यदि वैज्ञानिकों को बचपन से ही नैतिकता का पाठ पढ़ाया गया होता, संसार की अधिक से अधिक भलाई का पाठ पढ़ाया गया होता तो वैज्ञानिकों ने अणु शक्ति का प्रयोग विनाशक शस्त्रों के निर्माण के बजाय शान्तिपूर्ण अन्य निर्माणों में किया होता, फलतः आज विश्व की कितनी तरक्की हो गई होती। जो अरबों-खरबों डॉलर शस्त्रनिर्माण में खर्च हो रहे हैं उन्हें विश्व के कल्याण के लिए खर्च किया गया होता तो संसार में अपोषण और गरीबी का नामोनिशान नहीं रहता।

संसार रूपी भयंकर जंगल में जहाँ पद-पद पर विषय - कषाय की धधकती ज्वालाएँ जल रही हैं, उससे सकुशल बाहर निकलने के लिए, मुक्तिप्राप्ति के लिए ज्ञान रूपी नेत्रों के साथ चारित्र रूपी चरणों को गति देनी होगी। यही मोक्ष का मार्ग है-

शब्दों को सन्देश नहीं, अब जीवन को सन्देश बनाओ।
जो बोलो सो करो स्वयं भी, जीवन की गरिमा को पाओ।।
पानी-पानी कहने से क्या, प्यास बुझी है कभी किसी की।
जो पीता है ठंडा पानी, प्यास मिटी है सदा उसी की।

अतः यदि धर्म की प्यास बुझाना है तो पानी-पानी मत कहते रहिए अपितु धर्म का पवित्र ठण्डा जल पीजिए, उसे जीवन में उतारिए, उसे क्रियान्वित कीजिए तभी यहाँ भी सुख-शान्ति प्राप्त होगी और भविष्य में-परभव में भी उत्तम गति की प्राप्ति होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org